विकलांगता को विविधता के रूप में देखना

प्रणाली शर्मा

'...अयान[i] के पैदा होने के बाद मुझे बहुत मानसिक यातनाएँ सहनी पड़ीं। जब वह पैदा हुआ था तब उसे एस्फिक्सिया था। डॉक्टर ने मुझे बताया कि अयान जैसे-जैसे बड़ा होगा, वैसे-वैसे उसे विकास सम्बन्धी कुछ समस्याएँ होंगी। मैं इस स्थिति के लिए डॉक्टर को दोषी मानती हूँ। मैं उस समय अपने पति और सास-ससुर के साथ रहती थी। उन्होंने अयान को स्वीकार नहीं किया और उसे अपने दादा-दादी के प्यार और देखरेख से वंचित होना पड़ा। अयान की भलाई के लिए मुझे वह घर छोड़ना पड़ा और मैं अपने बच्चे और पति के साथ मेरे माता-पिता के घर रहने के लिए आ गई। मेरे पति एक कम्पनी में काम करते हैं, जहाँ नियमित रूप से पार्टियाँ होती हैं। हर बार मैं अयान को अपने साथ ले जाती लेकिन दूसरे अभिभावक अपने बच्चों को उससे दूर ही रखते। कुछ समय तक तो मैंने यह सब सहन किया, फिर मैंने इन पार्टियों में जाना बन्द कर दिया। अपने बच्चे को सामाजिक उपेक्षा और अलगाव से बचाने के लिए मैं भी अब कुछ असामाजिक हो गई हूँ...।'

यह आठ साल के अयान की केस स्टडी[ii] का एक अंश है, जिसे विकासात्मक विलम्ब की समस्या थी और जो 2012 में दिल्ली के राजकुमारी अमृत कौर (आरएके) चाइल्ड स्टडी सेंटर नामक एक समावेशी पूर्व-स्कूल में पढ़ रहा था। इस स्कूल में आने से पहले अयान ने दो अन्य स्कूलों में पढ़ाई की थी। दोनों स्कूलों के शिक्षकों ने अयान की माँ से कहा कि वे उसे स्कूल से निकाल लें क्योंकि अयान उनके स्कूल के लिए 'अनुपयुक्त' है। 2012 तक अयान ने आरएके चाइल्ड स्टडी सेंटर में तीन साल पूरे कर लिए थे। उसकी माँ ने बताया कि वह वहाँ बहुत ख़ुशी-ख़ुशी अपना समय बिता रहा था।

आरएके चाइल्ड स्टडी सेंटर के बाद के उसके भविष्य को लेकर माँ काफ़ी चिन्तित थीं। अयान आठ साल का हो चुका था। अगले साल उसे किसी औपचारिक स्कूल में प्रवेश लेना था। दुर्भाग्य की बात है कि उसकी माँ जिस भी स्कूल में गईं, वहाँ उसे प्रवेश नहीं दिया गया। वे बहुत असमंजस में थीं और काफ़ी तनाव में भी कि वे उसके लिए ऐसा स्थान कहाँ ढूँढ़ें जहाँ उसे स्वीकार करने वाला वातावरण हो। ज़ाहिर है, स्कूल केवल उन विकलांग बच्चों को चाहते थे जो अन्य बच्चों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकें।

विकलांगता क्या है?

इंटरनेशनल क्लासिफिकेशन ऑफ़ फंक्शनिंग के अनुसार विकलांगता (या स्वास्थ्य विकलांगता) एक ऐसा शब्द है जिसमें सभी प्रकार की दुर्बलताओं, गतिविधि की सीमाओं और भागीदारी की प्रतिबन्धता के साथ-साथ पर्यावरणीय कारक भी शामिल हैं। कुछ सीमाओं या किसी प्रकार की दुर्बलता के साथ पैदा होने वाले बच्चे को 'विकलांग' कहा जाता है— वह जो कि अधिकांश लोगों की तरह कार्य करने में असमर्थ है। विकलांगता वाले बच्चे के साथ रहने से परिवार और उसके कामकाज पर गहरा असर पड़ सकता है। उपर्युक्त अंश से पता चलता है कि विकलांगता वाले बच्चे और उसके परिवार को भेदभाव तथा अपमान का सामना करना पड़ता है। हालाँकि अधिकांश परिवार बच्चे और विकलांगता को जल्दी स्वीकार कर लेते हैं लेकिन उन्हें विकलांग बच्चे को बड़ा करने से जुड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है (बेनेट, डेलुका और एलन, 1995)। जब हम विकलांग बच्चों से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों के बारे में सोचते हैं तो हम विकलांगता के कारण परिवार पर पड़ने वाले निरन्तर और विस्तृत प्रभावों पर ध्यान नहीं देते हैं। जैसा कि हमने देखा उपर्युक्त मामले में अयान की माँ को अपने बच्चे की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए शारीरिक और भावनात्मक रूप से संघर्ष करना पड़ा।

इन परिवारों को कई तरह की कीमत चुकानी पड़ती है जैसे कि विभिन्न स्वास्थ्य पेशेवरों से मिलना, बच्चों की देखभाल से सम्बन्धित सेवाओं की कमी के कारण माता-पिता के काम करने की क्षमता का प्रभावित होना, जीवन कौशल के प्रभावी प्रशिक्षण या शिक्षा की कमी आदि।

विकलांगता के सामाजिक मॉडल के अनुसार, मात्र असमर्थता बच्चे को अक्षम नहीं बनाती है, बल्कि असमर्थता से विकलांगता का निर्माण करने में पर्यावरण की बड़ी भूमिका होती है। जीवन की नियमित गतिविधियों में भाग लेने की किसी व्यक्ति की अक्षमता व्यक्ति के शरीर और उस वातावरण के बीच आदान-प्रदान के कारण उत्पन्न होती है, जहाँ वह व्यक्ति रहता है।

'...मैं कभी-कभी सोचती हूँ कि अयान को लेकर किसी छोटे शहर या गाँव में रहने चली जाऊँ। वहाँ के लोग अपनी अज्ञानता या अपरिचितता के कारण कम से कम संवेदनशील

और स्वीकार करने वाले तो हैं। वहाँ कम से कम अयान के दोस्त तो बनेंगे। हो सकता है कि दूरदराज़ गाँवों के लोग उसे नासमझ कहकर पुकारें, लेकिन वे उसे शहरी लोगों की तरह पराया तो नहीं करेंगे...'

हाशियाकरण की प्रवृत्ति के कारण अधिकांश विकलांग बच्चों की संस्थागत देखभाल करने की बजाय उन्हें घर पर ही बड़ा किया जा रहा है (एपलबी, 2014)। क्या विकलांगता एक धारणा है? लोग विकलांगता को कैसे देखते हैं? इसी तरह के और भी सवाल तब उठते हैं जब हम एक ग़ैर-विकलांग व्यक्ति के दृष्टिकोण से विकलांगता के पूरे मुद्दे की खोजबीन करने की कोशिश करते हैं। विकलांगता आमतौर पर भय, जिज्ञासा, चिन्ता आदि भावनाओं को जगाती है। हममें से कई लोग आमतौर पर यह तय नहीं कर पाते कि किसी विकलांग व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार किया जाए। उदाहरण के लिए अगर हम किसी ऐसे दृष्टि बाधित बच्चे को देखते हैं जो किसी निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचने की कोशिश कर रहा है तो हमें क्या करना चाहिए? क्या हमें बच्चे की मदद करके उसका ध्यान रखना चाहिए या क्या हमें विकलांगता को अनदेखा करना चाहिए? क्या परवाह करने की भावना को ग़लत समझा जाएगा? क्या मदद करने की कोशिश करके या विकलांगता के मौजूद न होने का अभिनय करके हम बच्चे को हाशिए पर डाल रहे हैं? जब हम किसी विकलांग बच्चे को देखते हैं और उसकी सहायता करते हैं तो यह संकेत देते हैं कि हम श्रेष्ठ हैं, जिसके फलस्वरूप विकलांग बच्चे के साथ भेदभाव होता है। अनजाने में हम विकलांग व्यक्तियों को बाक़ी की तुलना में कमतर मानते हैं।

विकलांगता और सामाजिक पूर्वाग्रह

एक नवजात शिशु को हमेशा भगवान के उपहार के रूप में देखा जाता है जिसे वयस्कों द्वारा निरन्तर देखभाल की आवश्यकता होती है। अगर कोई बच्चा किसी प्रत्यक्ष नज़र आने वाली विकृति या जन्मजात 'दोष' के साथ पैदा होता है तो उसका स्वागत उतनी गर्मजोशी से नहीं होता या उसे उस तरह से नहीं स्वीकारा जाता जिस तरह से 'शारीरिक रूप से सुडौल' किसी बच्चे का स्वागत या स्वीकरण होता है। इसके अतिरिक्त, भारतीय लोग कर्म के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं, अर्थात यह माना जाता है कि अगर बच्चा किसी प्रत्यक्ष नज़र आने वाली कमज़ोरी के साथ पैदा हुआ है तो पिछले जन्म में उसने या उसके माता-पिता ने ग़लत कर्म किए होंगे। इसके कारण वह बच्चा और उसके माता-पिता रूढ़िबद्धता और हाशिएकरण का शिकार हो जाते हैं। परिवार और बच्चे को इन परिस्थितियों के अनुरूप बनना पड़ता है, लचीलापन विकसित करना पड़ता है।

अपेक्षित समर्थन देने में एक बड़ी बाधा आर्थिक अक्षमता की है। कई उदाहरण हैं जहाँ माता-पिता में किसी एक को, अधिकतर माँ को, अपनी नौकरी छोड़नी पड़ती है ताकि पूरे समय बच्चे का ध्यान रखा जा सके। जब ऐसे बच्चे दूसरे बच्चों को अलग तरह से जीवन जीते हुए, स्कूल जाते हुए, साथियों के साथ खेलते हुए, दोस्त बनाते हुए देखते हैं तो इन बातों से उनका आत्मसम्मान प्रभावित हो सकता है।

स्कूल के सन्दर्भ में विकलांगता

विकलांग बच्चा अगर स्कूल चला भर जाए तो इससे उसमें आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और ख़ुशहाली की भावना विकसित हो सकती है। अन्य बच्चों के साथ स्कूल जाना, हर किसी की तरह कक्षा में बैठना, स्कूल के अन्य बच्चों जैसा व्यवहार उसके साथ भी किया जाना— इन सब बातों से विकलांग बच्चों में ख़ुशहाली की भावना बढ़ती है (शर्मा और सेन 2012)। हमारे पास विकलांग बच्चों के लिए विशेष स्कूलों का ऐतिहासिक प्रमाण है। हालाँकि नीतियों में यह बात मानी गई थी कि विकलांग बच्चों को भी शिक्षित होना चाहिए और समाज में अपना योगदान देना चाहिए, फिर भी इन बच्चों को मुख्यधारा की शिक्षा से बाहर रखा गया। लेकिन इससे मामला और अधिक हाशिएकरण पर चला गया क्योंकि इन बच्चों को ऐसे बच्चों की एक अलग श्रेणी के रूप में देखा गया जो 'सामान्य' नहीं हैं।

बाद में *विकलांग बच्चों हेतु समेकित शिक्षा* (1974) और *विकलांगों के लिए समेकित शिक्षा परियोजना* (1987), जैसी योजनाओं ने विकलांग बच्चों को मुख्यधारा में शामिल करने की कोशिश की। इन योजनाओं ने बहुत सारे बच्चों को शिक्षा के क्षेत्र की ओर आकर्षित किया जिसमें बौद्धिक विकलांगता की बजाय शारीरिक रूप से विकलांग बच्चे अधिक थे। 1997 में, ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में 'समावेशी शिक्षा' शब्द का प्रयोग किया गया। इसके बाद, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम (1992), विकलांगजन (समान अवसर, अधिकार का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम (1995) और राष्ट्रीय न्यास अधिनियम (नेशनल ट्रस्ट फॉर द वेलफेयर ऑफ़ ऑटिज़म, सेरेब्रल पॉल्ज़ी, मेंटल रिटार्डेशन एण्ड मल्टीपल डिसएबिलिटी 1999) ने विकलांगता वाले बच्चों को सहायक अधिगम वातावरण प्रदान करने पर बल दिया। ये नीतियाँ, योजनाएँ और अधिनियम स्कूलों तक पहुँच को सक्षम बनाने और मुख्यधारा की शिक्षा में विकलांगता वाले बच्चों को एकीकृत करने के महत्व के बारे में जागरूकता पैदा करने में सफल रहे हैं। शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई) 2009 के लागू होने के बाद से विकलांग बच्चों सहित प्रत्येक बच्चे को स्कूलों में प्रवेश का अधिकार है।

विकलांग बच्चों के लिए प्रभावी समावेशी व्यवस्था करने में स्कूल अब तक कितने सफल रहे हैं— यह अभी भी एक सवाल बना हुआ है। मुख्यधारा के स्कूलों में विकलांग बच्चों के लिए समावेशी अधिगम का माहौल बनाने में काफ़ी समय लग सकता है। विकलांग बच्चों के लिए स्कूल अब शारीरिक-भौतिक रूप से उनकी पहुँच में हैं, उन्हें औपचारिक शिक्षा मिलने लगी है, लेकिन शिक्षकों, साथियों और अन्य विद्यार्थियों की नकारात्मक सामाजिक धारणा अभी भी उनके शिक्षा के अधिकार में बाधा बनती है। जब बच्चे किसी स्कूल की औपचारिक व्यवस्था में प्रवेश करते हैं, तो अधिगम की अक्षमता जैसी कई अक्षमताएँ उभरती हैं। अधिगम या बौद्धिक अक्षमता वाले बच्चों को शारीरिक विकलांगता वाले बच्चों की तुलना में उचित शिक्षा नहीं मिलने का ख़तरा अधिक होता है। स्कूलों में उपयुक्त रूप से प्रशिक्षित पेशेवरों तथा भविष्य के विकल्पों के बारे में संसाधन और जागरूकता की कमी आदि स्कूलों से बौद्धिक विकलांग बच्चों की अनुपस्थिति के कुछ कारण हैं।

जब मैंने अज़ीम प्रेमजी स्कूल, मातली, उत्तरकाशी का दौरा किया तो मैंने एलकेजी कक्षा में डाउन सिंड्रोम वाले नौ वर्षीय बच्चे अक्षत[iii] को देखा। जब मैंने उसके बारे में पूछा तो शिक्षक ने बताया कि उसने पहली बार स्कूल आना शुरू किया है। इससे पहले वह कभी किसी स्कूल में नहीं गया था। अयान की तरह ही उसे भी आस-पास के किसी स्कूल में प्रवेश नहीं दिया गया था। माता-पिता जानते थे कि उनका बच्चा विशेष था लेकिन इस बात से अनजान थे कि इसका परिणाम क्या होगा। उसकी माँ शिक्षक से पूछतीं, 'मैडम जी, यह पढ़ना-लिखना कब शुरू करेगा? कविताएँ और गीत गाना कब शुरू करेगा?'

यह देखकर मुझे लगा कि एक ओर जहाँ अयान के माता-पिता उम्मीद खो चुके थे और सामाजिक कलंक से परेशान थे, वहीं दूसरी ओर अक्षत के माता-पिता को अन्य अभिभावकों की तरह उससे सकारात्मक उम्मीदें थीं। शिक्षक के साथ बातचीत से यह भी पता चला कि अक्षत की माँ उसे घर पर पढ़ने-लिखने के लिए मजबूर करती थीं। जागरूकता की कमी के कारण वे यह नहीं जानती थीं कि अक्षत के साथ शैक्षिक रूप से कैसे जुड़ना चाहिए। भले ही उनकी उम्मीदें अवास्तविक हों, लेकिन अक्षत की माँ यह मानती थीं कि उसमें क्षमता है। अक्षत पूर्व-स्कूल के छोटे-छोटे बच्चों के साथ खेलता, अपने दोस्तों के प्रति प्यार दिखाता और उनकी परवाह करता था, जबकि अयान बच्चों से बचता था। दोनों स्थितियों की तुलना करते हुए अयान की माँ का यह कथन सत्य लगता है :

'.. मैं कभी-कभी सोचती हूँ कि अयान को लेकर किसी छोटे शहर या गाँव में रहने चली जाऊँ। वहाँ के लोग अपनी अज्ञानता या अपरिचितता के कारण कम से कम संवेदनशील और स्वीकार करने वाले तो हैं...'

तेज़ी से बढ़ते ध्रुवीकरण और घृणा सम्बन्धी अपराधों में वृद्धि के इस युग में इस बात की सख़्त आवश्यकता है कि कम उम्र से ही सभी में संवेदनशीलता, सहानुभूति और देखभाल की भावना को बढ़ावा दिया जाए। स्कूल विकलांग बच्चों के लिए सशक्तीकरण और समावेशी स्थान के रूप में कार्य कर सकते हैं और इसके लिए बच्चों और माता-पिता को अच्छी तरह से तैयार करना होगा, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात है शिक्षकों को तैयार करने की आवश्यकता। कक्षाओं में कम या मध्यम विकलांगता वाले बच्चों को प्रबन्धित करने के लिए शिक्षकों को पूरी तरह से तैयार करने के लिए शिक्षकों के लिए सेवापूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रम पर्याप्त प्रभावी नहीं हैं (संजीव और कुमार, 2007)। हालाँकि इस तरह के प्रशिक्षण/कोर्सों/कार्यशालाओं के पाठ्यक्रमों में समावेशन, विकलांगता के प्रकार आदि के महत्त्व को शामिल किया गया है, लेकिन वे विकलांग बच्चों को लेकर व्याप्त रूढ़िवादिता, कलंक और उनके हाशिएकरण जैसी सामाजिक धारणाओं को शायद ही सम्बोधित करते हैं। शिक्षकों को इस तरह के पूर्वाग्रहों और रूढ़ियों के बारे में पता होना ज़रूरी है क्योंकि शिक्षकों का दृष्टिकोण न केवल शिक्षक के पढ़ाने के तरीक़े को प्रभावित करता है, बल्कि दूसरे विद्यार्थियों के दृष्टिकोण को भी प्रभावित कर सकता है।

स्कूलों को ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए जो लचीलेपन को बढ़ावा दे और सहानुभूति विकसित करे। ख़ुशहाली बनाए रखने के लिए संसाधनों के माध्यम से आगे बढ़ने और बातचीत करने के कौशल का पोषण करने की आवश्यकता है (उंगर, 2006), जैसे कि आवश्यकता पड़ने पर मनोवैज्ञानिक, सामाजिक या भौतिक संसाधनों की पहचान करने की क्षमता और साथ ही संसाधनों का उपयोग करने की प्रेरणा जैसे दुखी होने पर लोगों से बात करना आदि। प्रत्येक स्थान को विकलांगजनों के अनुकूल बनाने में काफ़ी अधिक समय लगेगा और तभी समाज समावेशी बन पाएगा लेकिन स्कूल के वातावरण को ऐसा बनाना सम्भव है, जहाँ हर कोई सचेतन रूप से एक-दूसरे के दृष्टिकोण को सुनता और समझता है।

क्या हम विकलांगता को विविधता के रूप में देख सकते हैं? क्या विविधता का मतलब केवल सांस्कृतिक, धार्मिक या भाषाई विविधता है? भले ही भारत बहुसंस्कृतिवाद का एक गौरवपूर्ण दूत है, जिसमें विभिन्न संस्कृतियाँ, धर्म, भाषाएँ, प्रथाएँ, जातीयता आदि शामिल हैं, लेकिन साथ ही हमें जातीय व भाषा संघर्ष और दंगों के भी कई उदाहरण मिलते हैं। भारतीय संविधान धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता को

मान्यता देता है और उसकी रक्षा करता है। विविधता को केवल सांस्कृतिक प्रथाओं और विश्वासों के सन्दर्भ में परिभाषित करने के विचार पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। सभी रूपों में विविधता को स्वीकार करने की आवश्यकता है। इससे प्रत्येक मनुष्य के लिए स्वीकरणीय, सम्माननीय और पोषणीय वातावरण का निर्माण होगा। हम इस बात को मानते हैं और इसकी क़द्र करते हैं कि सभी बच्चे एक अलग गति से विकास करते हैं और सभी बच्चे अलग होते हैं। विकलांग बच्चे भी अलग तरह से विकास करते हैं, कौशल प्राप्त करते हैं, संवाद करते हैं, कार्य करते हैं और एक अलग गति से विकास करते हैं। कक्षाओं और स्कूलों में विकलांग बच्चों को सकारात्मक रूप से स्वीकार करने से लोगों के दिमाग़ से सामाजिक पूर्वाग्रह और कलंक का भाव कम हो सकता है।

References

Appleby, J.M. (2014). *Resilience in families of children who have disabilities*. (Unpublished doctoral dissertation, University of Texas at Arlington). Retrieved from https://pdfs.semanticscholar.org/5668/268d9e7d49a7ad211c795a66638f6e633292.pdf

Bennett, T., Deluca, D. A., & Allen, R. W. (1995). Religion and children with disabilities. *Journal of Religion and Health*, 34(4), 301–312. doi: 10.1007/bf02248739

Sanjeev, K., & Kumar, K. (2007). Inclusive Education in India. *Electronic Journal for Inclusive Education*, 2(2).

Sharma, N., & Sen, R. S. (2012). Children with Disabilities and Supportive School Ecologies. *The Social Ecology of Resilience*, 281–295. doi: 10.1007/978-1-4614-0586-3_22

Ungar, M. (2006). Resilience across Cultures. *British Journal of Social Work*, 38(2), 218–235. doi: 10.1093/bjsw/bcl343

[i] पहचान की रक्षा के लिए नाम बदला गया है।

[ii] 2012 में एमएससी के कोर्स में मानव विकास और बाल्यावस्था विषय पर की गई केस स्टडी।

[iii] पहचान की रक्षा के लिए नाम बदला गया है।

प्रणाली शर्मा इंस्टीट्यूट फॉर असेसमेंट एण्ड एक्रेडिटेशन, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु में कार्यरत हैं। वे बड़े पैमाने पर किए जाने वाले आकलन, बाल्यावस्था अध्ययन पर पाठ्यक्रम का विकास, सामाजिक-भावनात्मक अधिगम और प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा पर शिक्षकों के लिए क्षमता-निर्माण कार्यक्रमों में संलग्न हैं। इससे पहले उन्होंने वैष्णव मठों के बच्चों पर शोधकार्य भी किया है। उनसे pranalee.sharma@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : नलिनी रावल